



### सांख्य धर्म और ईश्वर

अश्विनी कुमार शर्मा<sup>1</sup>

<sup>1</sup>शोधकर्ता, साई नाथ विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड।

#### सांख्य दर्शन

सांख्य-दर्शन द्वैतवादी है। कहा जाता है कि भगवान् विश्णु के पंचम अवतार तथा ब्रह्म जी के मानस पुत्र नारद जी के भ्राता महर्षि कपिल इसके प्रवर्तक थे। महर्षि कपिल राजा कदर्भ तथा माता देवहृति के पुत्र थे। इन्होंने ही अपनी माता को सर्वप्रथम मोक्ष प्राप्ति का रास्ता प्रदर्शित किया था सांख्य के अनुसार दो प्रकार के तत्व हैं पुरुश और प्रकृति। अपने-अपने अस्तित्व के लिए पुरुश और प्रकृति परस्पर निरपेक्ष हैं। पुरुश चेतन है। चैतन्य इसका आगुन्तक गुण नहीं वरन् स्वरूप ही है। वस्तुतः पुरुश शरीर, मन तथा इन्द्रिय से भिन्न है यह नित्य है यह सांसारिक वस्तुओं तथा व्यापारों का अवलोकन अलग से ही करता है। वह न तो स्वयं कोई कार्य करता है न इसमें कोई परिवर्तन ही होता है। जिस तरह कुर्सी, पलंग इत्यादि भौतिक वस्तुओं के उपयोग के लिए मनुश्य भोक्ता है उसी तरह प्रकृति के परिणामों के उपयोग के लिए उपभोक्ताओं की आवश्यकता है। यह भोक्ता पुरुश जो प्रकृति से भिन्न है। प्रत्येक जीव के शरीर से संपर्कित एक-एक पुरुश है। जिस समय कुछ मनुश्य सुखी पाये जाते हैं उस समय में कुछ मनुश्य दुःखी भी रहते हैं। कुछ का देहान्त हो जाता है। फिर भी कुछ जीवित रहते हैं अतः पुरुश एक नहीं अनेक हैं।

सांख्य दर्शन निरी-वरवादी है। इसके अनुसार ईश्वर का अस्तित्व किसी प्रकार सिद्ध नहीं किया जा सकता है। संसार की सृष्टि के लिए ईश्वर का अस्तित्व आवश्यक नहीं है, क्योंकि पूरे संसार के निर्माण के लिए ही प्रकृति ही पर्याप्त है। शाश्वत् तथा अपरिवर्तनशील ईश्वर संसार की सृष्टि का कारण नहीं हो सकता। क्योंकि कारण तथा परिणाम वस्तुतः अभिन्न होते हैं। कारण ही परिणाम में परिणत हो जाता है। ईश्वर संसार में परिणत नहीं हो सकता। क्योंकि ईश्वर परिवर्तनशील नहीं माना जाता है। सांख्य के भाश्यकार विज्ञानभिक्षु यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि सांख्य ईश्वर के अस्तित्व को एक विशिष्ट पुरुश के रूप में मानते हैं। उनका कथन है कि ई-वर प्रकृति का द्रष्टामात्र है, सृष्टा नहीं।

ईश्वर के निशेध के विशय में सांख्य दर्शन में जो युक्तियाँ दी गयी हैं उनके सन्दर्भ में डा० बलदेव उपाध्याय की विवेचना उल्लेखनीय है। उनका कथन इस प्रकार से है -

“सांख्य के माननीय आचार्यों की एकमात्र सम्मति है कि जगत् की रचना तथा कर्मफल-प्रदान आदि कार्यों के लिए ईश्वर की सत्ता मानने के लिए कोई आवश्यकता नहीं है। सांख्य सूत्रों ने स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है कि ईश्वर पच्चावयव वाक्यों की सहायता से सिद्ध नहीं किया जा सकता। ई-वर सिद्धे:- सा स० 193, प्रमाणाभामात्र तदिसिद्धि-सांख्यसूत्र 5/10, सम्बन्धाभावात्रानुमानम्। सांख्य सूत्र 5/101 ई-वर तार्किक

युक्तियों का विशय नहीं है। अतः सांख्यसूत्र प्रमाणों के द्वारा ई-वर की असिद्धि पर जोर देते हैं, परन्तु ई-वरकृष्णा तथा कारिका के टीकाकारों ने स्पष्टतः ई-वर का निशेध किया है।“

1. “कार्यभूत जगत् का कर्ता मानना तो उचित है ही, पर ईश्वर में उसकी कर्तृतासिद्धि नहीं हो सकती। ईश्वर स्वयं निर्व्यापार-व्यापारहीन है। अतः इस परिवर्तनशील जगत् का वह क्रिया-शील कारण कभी नहीं हो सकता।
2. चेतना पुरुष की कार्य में प्रवृत्ति स्वार्थमूलक होती है इस जगत् की रचना में ईश्वर को कोई भी स्वार्थ नहीं जान पड़ता, क्योंकि ईश्वर पूर्णकाम है इसकी कोई भी इच्छा नहीं है जिसकी पूर्ति के लिए वह इस व्यापार में प्रवृत्त होगा।
3. जगत् के व्यापार में ईश्वर की प्रवृत्ति के कारणवश मानना युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि सृष्टि के पहले विशय शरीर तथा इन्द्रिय के उत्पन्न न होने से जीवों में दुःख का सम्पर्क ही नहीं है। जिसके नाश की अभिलाशा ईश्वर में कारुण्य उत्पन्न करेगी। कारुण्य से जगत् की उत्पत्ति और उत्पत्ति होने पर दुःखी प्राणियों की दीन दशा को देखकर कारुण्य की उत्पत्ति यदि मानी जाए तो यह तर्क अन्योन्याश्रय दोष से दूषित होने के कारण नितान्त हेय रहता है। ऐसी दशा में ईश्वर में न तो कोई स्वार्थ ही दृष्टिगोचर होता है और न ही कारुण्य की उत्पत्ति के लिए युक्ति मिलती है। अतः बाधा होकर ई-वर का निशेध करना ही पड़ता है किन्तु विज्ञानभिक्षु इसे मानने के लिए तैयार नहीं है। वे सांख्य को निरी-रर नहीं मानते। कर्तृव्यशक्ति सम्पन्न ईश्वर की सिद्धि भले न हो, परन्तु ईश्वर जगत् का साक्षी है जिसके सन्निधिमात्र से प्रकृति जगत् के व्यापार में निरत होती है - परिणाम धारण कर जगत् की रचना में प्रवृत्त होती है, जिस प्रकार चुम्बक अपने सान्निध्यमात्र से लोहे में गति पैदा करता है। तत्तिधानादाधिष्ठातृत्वं मणिवत्-सांख्य सूत्र 1/96।“

### योग दर्शन

महर्षि पंतजलि योग के प्रवर्तक है। योग तथा सांख्य में बहुत अधिक साम्य है। योग सांख्य के प्रमाणों और तत्वों को मानता है। यह सांख्य के 25 तत्वों के साथ-साथ ई-वर को भी मानता है। योग दर्शन का प्रमुख विशय योगाभ्यास है। सांख्य के अनुसार मोक्ष-प्राप्ति का साधन विवेक ज्ञान है। विवेक ज्ञान की प्राप्ति प्रधानतः योगाभ्यास से ही प्राप्त हो सकती है। “योग“ चित्तवृत्ति के निरोध को कहते हैं। चित्त की पाँच प्रकार की भूमिकायें हैं।

पहली भूमि “क्षिप्त“ कहलाती है इसमें चित्त सांसारिक वस्तुओं में क्षिप्त अर्थात् चंचल रहता है।

दूसरी भूमि “मूढ“ कहलाती है इसमें चित्त की अवस्था निद्रा के सदृश अभिभूत रहती है।

तीसरी भूमि “विक्षिप्त“ कहलाती है। यह क्षिप्त से अपेक्षाकृत :ान्त अवस्था है किन्तु बिल्कुल शान्त नहीं है। इस चित्ता-भूमियों में योगाभ्यास सम्भव नहीं है। चौथी तथा पाँचवी भूमिका “एकाग्र“ तथा “निरुद्ध“ कहलाती है। एकाग्र अवस्था में चित्त किसी ध्येय में निविष्ट या केन्द्रीभूत रहता है। निरुद्धवस्था में चिन्तन का भी अन्त हो जाता है। एकाग्र तथा निरुद्ध योगाभ्यास में सहायक है। योग दो प्रकार के होते हैं -

## (1) संप्रज्ञात

## (2) असंप्रज्ञात

संप्रज्ञात उस योग समाधि को कहते हैं जिसमें चित्तध्वेय विशय में पूर्णतया तन्मय हो जाता है जिससे चित्त को इसके विशय का पूर्णतया स्पष्ट ज्ञान होता है।

असंप्रज्ञात उस योग को कहते हैं, जिससे मन की सभी क्रियाओं का निरोध हो जाता है परिणामतः ध्वेय-विशय के साथ-साथ अन्य सभी विशयों के ज्ञान का लोप हो जाता है। केवल स्वंप्रका-न आत्मा ही विशिष्ट रह जाता है।

योगाभ्यास के आठ अंग है जो योगांग कहलाते है यम, नियम आसान, प्रणयाम, पव्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रसचर्य और अपरिग्रह का अभ्यास करना ही “यम“ है। शौच, सन्तोश, तप, स्वाध्याय तथा ई-वर का ध्यान इन आचारों का अभ्यास “नियम“ कहलाता है। आनन्दप्रद शारीरिक स्थिति को “आसान“ कहते है। नियंत्रित रूप से :वास के ग्रहण धारण तथा त्याग को प्राणायाम कहते है। इन्द्रियों को विशयों से हटाने का नाम “इन्द्रियसंयम“ अर्थात “प्रत्याहार“ है। चित्त को शरीर के अंदर या बाहर की किसी विशय का सुदृढ़ तथा अविराम चिन्तन “ध्यान“ कहलाता है। “समाधि“ चित्त की वह अवस्था है। जिसमें ध्यानशील चित्त ध्वेय में तल्लीन हो जाता है।

योग दर्शन को संश्वर सांख्य कहते है और कपिल को निरीश्वर सांख्य योग के अनुसार चित्त की एकाग्रता के लिए तथा आत्मज्ञान के लिए ईश्वर ही ध्यान का सर्वोत्तय विशय है। ईश्वर पूर्ण, नित्य, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ तथा सर्वदाश रहित है। योग के अनुसार ईश्वर के अस्तित्व के लिए निम्नोक्त प्रमाण दिये जाते है जहाँ तारतम्य है वहाँ सर्वोच्च का होना नितान्त आव-यक है। ज्ञान में न्यूनाधिक्य है। अतः पूर्ण ज्ञान तथा सर्वज्ञता का होना निसन्देह है जो पूर्ण ज्ञान या सर्वज्ञ है वही ईश्वर है। प्रकृति और पुरुश के संयोग से संसार की सृष्टि का आरम्भ होता है। संयोग का अन्त होने पर प्रलय होता है। पारस्परिक संयोग या वियोग पुरुश और प्रकृति के लए स्वाभाविक नहीं है अतः एक पुरुश विशेष का अस्तित्व परमावश्यक है जो पुरुशों के पाप तथा पुण्य के अनुसार पुरुश तथा प्रकृत से संयोग या वियोग स्थापित करता है।

### योग दर्शन के अनुसार ईश्वर

पंतजलि ने योग सूत्र में ईश्वर का लक्षण इस प्रकार से किया है-

“क्लेश कर्मविकार-यैरपरामृष्टः पुरुश विशेष ईश्वरः“

अर्थात अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अमिनिवे-न इन पाँच क्लेशों से, पुण्य एवं पाप कर्मों से, कर्मों से उत्पन्न जाति, आयु तथा भेग रूप फलों से, उनमें उत्पन्न वासनाओं से (जो चित्त में रहते है) असंस्पृष्ट एवं विशेष प्रकार के पुरुश को ईश्वर कहते है।

इस सन्दर्भ में डा० उमेश मिश्र का कथन दृश्य है-

ईश्वर के स्वरूप को अन्य जीवों के स्वरूप के साथ तुलना दिखाकर स्पष्ट करना आवश्यक है प्रश्न होता है कि ईश्वर क्या 'केवली पुरुश' के समान है समाधान में कहा जाता है - नहीं । प्राकृतिक वैकारिक तथा दक्षिणिक इन तीन बन्धनों का मुक्त होकर ही जीव केवली पुरुश होते हैं, किन्तु ईश्वर में न कभी बंधन था। और न कभी होगा। इसलिए ईश्वर केवली पुरुश से भिन्न है।

मुक्त पुरुशों से भी भिन्न ईश्वर है, क्योंकि 'मुक्त पुरुश' पहले बन्धन में रहकर पश्चात मुक्त होते हैं। जैसे-कपिल आदि ऋषि पहले बन्धन में थे पश्चात मुक्त हुए ईश्वर पूर्व में कभी भी बन्धन में नहीं था। इसलिए मुक्त पुरुशों से भी भिन्न ईश्वर है।

प्रकृति को ही आत्मा समझने वाला पुरुश शरीर का नाश होने पर अर्थात् मरने पर, प्रकृत लीन हो जाता है अथवा प्रकृति लीन पुरुश मुक्तवत होकर भी पुनः हिरण्यमर्भ के स्वरूप को धारण करता है। इस प्रकार प्रकृति लीन पुरुश को उत्तर काल में बन्धन होने की सम्भावना रहती है ईश्वर को उत्तर काल में भी बन्धन नहीं होता इसलिए ईश्वर प्रकृति लीन पुरुश से भिन्न है।

ईश्वर में ज्ञान शक्ति इच्छा शक्ति, क्रिया-शक्ति आदि गुण हैं इसलिए यह ईश्वर कहा जाता है। प्रकृष्ट सत्वरूप उपादान के कारण ही ईश्वर में शा-वतिक उत्कर्ष है, अर्थात् ईश्वर में अनादि विवेक ख्याति है एविज्ञता ईश्वर सदा मुक्त तथा सर्वभाविधिष्ठातृत्व है। यह सवीयेक्षया उत्तम अर्थात् और सदा ईश्वर निरातिशय है ईश्वर से अधिक अतिशय गुण सम्पन्न दूसरा कोई नहीं हो ईश्वर वही है, जिसमें उपयुक्त गुणों की पराकाष्ठा हो।

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1	कल्याण	योगांक गीताप्रेस, (वर्ग 10,अंक 2,25) 1992
2	तैत्तिरीयोनि-द्	कल्याण उपनि-द् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर
3	छान्दोग्योपनि-द्	कल्याण उपनि-द् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर
4	श्रीमद् भागवद्गीता	कल्याण गीता-तत्वाइक टीकाकार जयदयाल गोयनदका गीताप्रेस गोरखपुर,संवत् 2048
5	स्मारिका	1972, भारतीय लोक परि-द्
6	आचार्य बलदेव उपाध्याय आचार्य	भारतीय दर्शन
7	शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त	श्री एस0डी0ल्यागी, पी0डी0पाठक, विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा

8	चौधरी सत्यनारायण	गंगासार व चार धाम माहात्म्य
9	मुसलगाँवकर डा० गजानन सास्त्री	संख्य तत्व कौमुदी
10	सुधाशुं जी महाराज	जीवन संचेतना-दिसम्बर 09
11	महेश चन्द्रर्मा	प्रस्थान चतु-य में भारतीय दर्शन
12	चन्द्रधरर्मा	भारतीय दर्शन
13	रामशक्त पाण्डेय	भारतीय दर्शन
14	उमेश चन्द्र(उमेश कुमार)	भारतीय दर्शन
15	एस०सी० चट्टोपाध्याय	भारतीय दर्शन
16	डा० लक्ष्मीकान्त ओड.	भारतीय दर्शन
17	डा० नरेन्द्र सिंह सास्त्री एवं डा० हरिदत्त सास्त्री	भारतीय दर्शन सास्त्र का इतिहास
18	डा० भटनाकर, श्रीमती रत्नादेव	ज्ञान मीमांशा और तत्व मीमांशा
19	डा० आर० ए० र्मा	तत्व मीमांशा, ज्ञान मीमांशा, मूल्य मीमांशा एवं शिक्षा
20	स्वामी राम सुख दास	गीता-- प्रबोधनी ,गीता प्रेस गोरखपुर
21	प्रो० हरिन्द्र सिंह सिन्हा	भारतीय दर्शन की रूप रेखा
22	मणि र्मा	स्मकालीन भारतीय शिक्षा दर्शन
23	रमन बिहारी लाल	शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त
24	राम र्मा पाण्डेय	उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक

25	रमाशंकर भट्टाचार्य	सांख्य तत्व कौमुदी
26	दिनेश राय द्विवेदी	सांख्य का सार
27	सांख्य दर्शन	ीजजचरू धीपय इतरंकेबवअमतलण्वतह धपदकमगण चीचघ ज्पजसमत्रःमवः4:इ8: मवः4
28	सांख्य दर्शन	ीजजचरूध्णुंउंदजतंण्वतहण्पदध्लवरंधुलुमइध्पदकपंद चीपसवेवचील ीपदकप ीजउ
29	सांख्य दर्शन	ीजजचरूध्धपूमइपचमकपसनंण्वतहध्नसपामःमवः4ण्लंकःमवः4ःमवःण्ण
30	सांख्य दर्शन	ीजजचरूध्णुंतलेउंरंउदंवितएवतहधेदी कर्तीद ीनउ
31	सांख्य दर्शन से दुखों का निवारण	ीजजचरूध्धपदण्णरंहतंदण्लीवण्ववउ धर्कीतउध्धचंहमत्रंतजपबसम -बंजमहवतलत्र108 तजपबंसम
32	सांख्य दर्शन	ीजजचरूध्धेतपचतंउदंजीहलवहंदचममजीण्वतहधेदीलं कर्तीद
33	सांख्य दर्शन	ीजजचरूध्धेजलहपण्णइसवहे चवजण्ववउध2009ध10ध्धसवह चवतजण्ण10 ीजउस
34	गुरु शिष्य और धर्म की महत्ता	आर. ए. शर्मा